लालाजी के लड्डू से खुले चर्चा के द्वार

नन्दा शर्मा

प्राथमिक शाला के बच्चों के साथ काम करते समय हम अक्सर एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम द्वारा तैयार *ख़ुशी-ख़ुशी* पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करते हैं। साथ ही शब्द-कार्ड, चित्र-शब्द-कार्ड, कविता-पोस्टर आदि टीएलएम का इस्तेमाल भी करते हैं।

आमतौर पर हम कक्षा एक, दो, तीन में बच्चों की बोलने की झिझक तोड़ने, शब्दों की पहचान करवाने, वाक्य की पहचान करवाने व पढ़े हुए पाठ की समझ बनाने में कविता-पोस्टर का काफ़ी उपयोग करते हैं। बच्चे पोस्टर में रंग भरने, शब्द पहचानने, पहचाने शब्द में गोला लगाने, नोटबुक में वाक्य लिखने और अपनी ओर से कविता को आगे बढ़ाने की गतिविधियाँ सहजता से करते हैं।

यहाँ मैं होशंगाबाद के खेड़ला गाँव की प्राथमिक शाला में कविता-पोस्टर के प्रयोग से मिले अनुभव के बारे में बताने वाली हूँ। इस अनुभव ने न सिर्फ़ कक्षा में लैंगिक भेदभाव व समानता जैसे मानवीय और संवैधानिक मूल्यों पर चर्चा के रास्ते खोले वरन् प्राथमिक कक्षाओं में ऐसी चर्चाओं की सम्भावना की ओर भी मेरा ध्यान आकृष्ट किया।

इस गाँव की दो शिक्षिकाएँ, सुश्री कला मीणा व सुश्री प्रज्ञा शर्मा, कोविडकालीन '*हमारा घर-हमारा विद्यालय*' योजना के तहत गाँव के ही एक घर में कुछ बच्चों को पढ़ाने का काम कर रही हैं। एक दिन मैं हमेशा की तरह खेड़ला गाँव गई थी। वहाँ दोनों ही शिक्षिकाओं ने बच्चों को दो समूहों में बाँटकर पढ़ाने का काम शुरू किया। पहले समूह में शिक्षिका (कला मीणा) कक्षा 1 व 2 के बच्चों को गणित पर काम करवा रही थीं। वहीं दूसरी शिक्षिका (प्रज्ञा) कक्षा 3 से 5 तक के पाँच बच्चों के साथ भाषा-शिक्षण पर काम करने वाली थीं। चूँकि इस समूह में काम शुरू हो ही रहा था तो मैं साथ बैठ गई।

शिक्षिका के पास *लालाजी लड्डू दो* कविता का एक पोस्टर रखा हुआ था। शिक्षिका बच्चों के साथ एक गोल घेरे में बैठ गईं। वे बार-बार बच्चों को बोल रही थीं 'ठीक से पकड़ो, सबको दिखना चाहिए।' शिक्षिका का ध्यान कक्षा तीन के दो बच्चों पर ज़्यादा था क्योंकि दोनों ही बच्चों को पढ़ना नहीं आता था। शिक्षिका ने ज़ोर से कविता का शीर्षक पढ़ा - *लालाजी लड्डू दो* । इसके बाद बच्चों को निर्देश देते हुए कहा, "पहले इस कविता-पोस्टर में दिए गए चित्रों में रंग भर दो, ताकि पोस्टर सुन्दर दिखाई दे और इसे पढ़ने में और मज़ा आए।" शिक्षिका ने बच्चों के सामने मोम-कलर बिखेर दिए। बच्चे कविता-पोस्टर के चित्र को बड़े ध्यान से देख रहे थे और आपस में बातचीत भी कर रहे थे। कोई कहता 'मुझे रंग भरने दो', कोई कहता 'तू लड्डू को भर ले, मैं लाला जी को।' शिक्षिका ने बच्चों की बातचीत सुनकर उन्हें टोकते हुए कहा, "सब बारी-बारी से रंग भरना, कोई लड्डू में रंग भरे, कोई लाला जी के चेहरे पर रंग करे, कोई उनके कुर्ते पर रंग करे और कोई उनके बालों को, तो कोई उनकी मूँछों को।" 'मूँछ' शब्द सुनते ही बच्चे ज़ोर से हँस दिए।

एक लड़की ने झट से काले रंग का मोम-कलर उठाया और लालाजी के सर के बालों को रंगने लगी। उसका काम पूरा होने पर दूसरे बच्चे ने कुर्ते में लाल रंग करना शुरू कर दिया, तो तीसरे ने उनके लड्डू को पीला रंग। अब बारी आई लालाजी की मूँछों की, उसे भी काले रंग से रंगा गया। थोड़ी ही देर में पोस्टर के सभी चित्रों को रंगीन कर दिया गया था।

शिक्षिका ने एक बच्चे से पोस्टर सीधे पकड़कर खड़े होने को कहा। फिर हाव-भाव के साथ हर शब्द पर उँगली रखकर कविता सुनाती गईं। फिर सभी बच्चों को मौक़ा दिया कि वे कविता को उँगली रखकर पढ़ें। ऐसा लगा कि शिक्षिका चाह रही थीं कि कक्षा 3 के बच्चों को शब्दों की पहचान हो जाए, क्योंकि इन बच्चों को पढ़ना नहीं आता था। थोड़ी देर बाद शिक्षिका ने बच्चों से कुछ सवाल किए।

शिक्षिका ने पूछा, "लालाजी से बच्चे ने कितने लडडू माँगे?"

जवाब मिला, "चार।"

किसी ने कहा, "नहीं, एक।"

कविता-पोस्टर को एक बार फिर देखकर सही जवाब तक पहुँचा गया।

शिक्षिका ने सवाल किया, "हमारे गाँव में लालाजी किसको कहते हैं? "

एक बच्ची का जवाब आया, "जीजाजी को।"

शिक्षिका ने उसकी बात को दोहराते हुए कहा, "हाँ, जीजाजी

यानी दामादजी को भी लालाजी कहते हैं। पर यहाँ तो मिठाई बेचने वाले सेठजी को लालाजी कहा जा रहा है।''

शिक्षिका, ''बच्चा लालाजी की तारीफ़ कैसे कर रहा था? क्या आप भी किसी की तारीफ़ करते हो जब आपको कुछ माँगना होता है? ''

बच्चे, ''जी हाँ। मम्मी की तारीफ़ करते हैं, दादी की तारीफ़ करते हैं, पापा की तारीफ़ करते हैं।''

शिक्षिका, 'मम्मी की तारीफ़ कैसे करते हो? ''

बच्चे, 'मम्मी, आप बहुत-ही अच्छे गुलाबजामुन बनाती हो।''

शिक्षिका, ''दादी की तारीफ़ कैसे करते हो? ''

बच्चे, ''दादी, आप अच्छे भजन गाती हो, मज़ा आ जाता है।''

शिक्षिका, ''आपके घर में लडडू, गुलाबजामुन कौन बनाता है? ''

बच्चे, ''मम्मी।''

शिक्षिका, ''तो लालाजी के घर में लडडू कौन बनाता होगा?''

बच्चे, ''शायद उनकी पत्नी।''

शिक्षिका, ''बच्चे ने लालाजी की किस चीज़ की तारीफ़ की थी? ''

बच्चे, ''मूँछों की।''

शिक्षिका, ''वैसे मूँछ किसकी होती हैं?''

बच्चे, ''आदमियों की।''

शिक्षिका, ''क्या आदमियों के अलावा और किसी की मूँछ देखी है? ''

जवाब, ''हाँ, शेर की, बिल्ली की, चूहे की।''

तभी धीरे-से एक आवाज़ आई, ''औरत की'' यह जवाब उस बच्ची ने ही दिया था जो थोड़ी देर पहले शर्माते हुए लालाजी की मूँछों में रंग भर रही थी।

तभी सब बच्चे ज़ोर से हँस दिए।

शिक्षिका ने पूछा, ''क्या आपने ऐसी कोई औरत देखी है जिसकी मूँछ हो? ''

बच्चे थोड़ी देर चुप रहे रहे। फिर एक-दो बच्चों ने झिझकते हुए बताया कि घनी मूँछ वाली तो नहीं देखी, लेकिन हल्की-हल्की मूँछ वाली औरतें देखी हैं। शिक्षिका ने बच्चों को बताया कि शरीर पर बालों का आना या जाना तो हारमोन्स के कारण होता है। ये तो किसी को भी हो सकता है, चाहे आदमी हो या औरत।

ऐसा लग रहा था कि हम इस चर्चा में और गहराई में जाने वाले हैं। लेकिन उस दिन की कक्षा समाप्त हो गई। हम कक्षा 3 और 5 के बच्चों के साथ भाषा-शिक्षण की कुछेक गतिविधियाँ ही करवा पाए थे। कविता-पोस्टर से और क्या हासिल हो सकता है इसी उधेड़बुन में उलझी हुई मैं वापस आ गई। रह-रहकर ऐसा लग रहा था कि आज कुछ हासिल होते-होते रह गया था। लेकिन क्या हासिल नहीं हो पाया, यह समझ नहीं आ रहा था।

एनसीएफ 2005 के पूर्व की अधिकांश पाठ्यपुस्तकें, लिंग आधारित भेदभाव का चित्रण करती थीं। उनके पाठ्य-अभ्यासों में बहुत गहरे पूर्वाग्रह दिखाई पड़ते थे। जैसे पाठ्यपुस्तकों में पुरुष लेखकों का बाहुल्य होता था। विषयवस्तु भी पुरुष केन्द्रित होती थी। पुस्तकों में पाए जाने वाले अधिकतर विवरणों में महिला को माँ, बहन या गृहिणी के रूप में, जबकि पुरुषों को कमाने वाले के रूप में, या अन्य ज़िम्मेदार भूमिकाओं में दर्शाया जाता था।

इन्हीं मनोभावों में गोते लगाते हुए मैंने अपने एक मित्र को फोन लगाकर आज के इस अनुभव के बारे में बताया। मित्र ने बताया कि उन्होंने *लालाजी* की कविता पर बच्चों से बात करते हुए पूछा था कि मान लो आज लालाजी को पेटदर्द हो रहा है, इसलिए दुकान पर लालाजी की पत्नी बैठी हैं। तो लालाजी की पत्नी को ध्यान में रखते हुए कविता में बदलाव करो और हम सबको वह कविता सुनाओ। कुछ बच्चों ने तुरन्त *लालाजी* शब्द को बदल कर *ललाइन* कर दिया, लेकिन तारीफ़ किस बात की करें, इस पर जाकर रुक गए। कुछ बच्चों ने कहा लालाजी बीमार हैं तो उनका बेटा दुकान में बैठा दिया जाए। इस बदले हुए कविता-पोस्टर की पूरी बात न बताते हुए इसे यहीं रोक रही हूँ। मुझे दरअसल इस बातचीत से एक नई दिशा मिल गई थी।

इस बातचीत से समझ बनी कि लिंग आधारित भेदभावों को दूर करने में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या 2009 [NCFTE 2009] के अनुसार -

''जेंडर, शान्ति और टिकाऊ विकास जैसे दृष्टिकोणों की रोशनी में जैसे-जैसे शिक्षक पाठ्यसामग्री और शैक्षिक अनुभवों का निर्माण करेंगे, वे सक्रिय भागीदारी के माध्यम से पाठ्यचर्या के सार्थक सम्पादन हेतु ज़रूरी तत्त्वों को पहचानने और तैयार करने के कौशलों को भी सीखेंगे।''

कुछ दिनों बाद, मैं एक बार फिर खेड़ला गाँव की प्राथमिक शाला के बच्चों के सामने लालाजी के कविता पोस्टर के साथ

थी। पिछली बार हमने पोस्टर में रंग भरने और शब्दों सम्बन्धी कुछ गतिविधियाँ कर ली थीं। मैंने चर्चा को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। मेरे साथ प्रज्ञा व कला मीणा शिक्षिकाएँ थीं।

यदि लालाजी बीमार हों और दुकान पर लालाजी की पत्नी बैठी हों तो क्या हो? इस सवाल से चर्चा शुरू हुई। बच्चे सहजता से इस बदलाव को मानने को तैयार नहीं थे।

शिक्षिका, ''अपने गाँव में किराने की कितनी दुकानें हैं? ''

बच्चे, ''तीन दुकानें हैं।''

शिक्षिका, ''उन दुकानों पर कौन बैठता है?''

बच्चों का जवाब था कि अमुक-अमुक चाचा बैठते हैं (यानी आदमी बैठते) हैं।

शिक्षिका, ''क्या इन दुकानों पर औरतें भी बैठती हैं? ''

बच्चे, ''नहीं।''

एक बच्ची ने कहा, ''हमारी किराने की दुकान है। हमारे पापा जब खेत जाते हैं या खाना खाने जाते हैं तो हमारी मम्मी थोड़ी देर के लिए दुकान में बैठती हैं।''

यानी यहाँ औरत की भूमिका एक रिलीवर जैसी है। प्रमुख दुकानदार की घण्टे भर की अनुपस्थिति में दुकान के माल की सुरक्षा व ग्राहकी चलाना, बस इतना करना है।

शिक्षिका ने आगे सवाल किया, ''ऐसी कौन-सी दुकानें हैं जहाँ आदमी दुकान चलाते हैं और ऐसी कौन-सी दुकानें हैं जिन्हें औरतें चलाती हैं।''

बच्चों का जवाब था, "किराना दुकान, नाई की दुकान, जूते-चप्पल की दुकान, खाद-बीज की दुकान, कपड़े की दुकान। इन दुकानों को चलाने वाले आदमी होते हैं। कुछ बच्चों का मानना था कि ज़्यादातर दुकानों को आदमी ही चलाते हैं। औरतें, सिंगार की दुकानों, सब्ज़ी की दुकानों, ब्यूटी पॉर्लर, फूल-बेलपत्री-नारियल की दुकानों (नर्मदा नदी के किनारे) को चलाते हुए दिखाई देती हैं।"

शिक्षिका ने बच्चों के सामने फिर एक सवाल रखा, ''अगर ऐसा हो कि सारी दुकानों को महिलाएँ चलाएँ तो ठीक रहेगा?''

कुछ बच्चों ने कहा कि सारी दुकानों पर औरतें होंगी तो उन्हें बाज़ार जाने में असहजता होगी। सब ओर औरतें ही दिखेंगी।

हमें लगा कि इन बच्चों ने सवाल को ठीक से समझा नहीं है। इसलिए दोबारा बताया गया कि अभी जैसे हम माँ, पिता, चाचा, मौसी, बुआ आदि के साथ बाज़ार जाते हैं वैसे ही जाएँगे, लेकिन दुकानदार कोई पुरुष न होकर महिला होगी। इतना ही फ़र्क है।

दो बच्चों ने कहा कि, ''हाँ, हमें कोई समस्या नहीं। बाज़ार में अगर कमीज़ खरीदनी है तो दुकानदार, औरत हो या आदमी, कोई दिक़्क़त नहीं।''

एक बच्चे को अभी भी सारी महिला दुकानदार होने से दिक़्क़त महसूस हो रही थी। लेकिन वह खुलकर बता भी नहीं पा रहा था कि दिक़्क़त क्या है। काफ़ी देर बाद उसने कहा, ''मम्मी लोग दुकान पर बैठेंगी तो पापा लोग क्या करेंगे? ''

शिक्षिका ने कहा, ''पापा लोग खेत में काम करेंगे, घर के काम करेंगे, खाना बनाएँगे।''

एक-दो बच्चों ने कहा कि, ''पापा लोगों को तो खाना पकाना आता नहीं।''

शिक्षिका ने कहा, ''पापा लोग खाना पकाना सीख लेंगे। क्या अभी आपके आस-पास कोई ऐसा आदमी है जो झाड़ू लगाना, खाना बनाना वगैरह काम करता हो?''

बच्चों ने दो उदाहरण बताए लेकिन वे पत्नी की मृत्यु के बाद अकेले रह गए पुरुषों के थे।

शिक्षिका ने पूछा, ''महिलाओं और पुरुषों के काम अलग-अलग क्यों हैं? ''

किसी बच्चे ने सकुचाते हुए कहा कि, ''कुछ काम में काफ़ी ताकत की ज़रूरत होती है।''

यहाँ शिक्षिकाओं ने बताया कि यह हमारा वहम है कि औरतों का शरीर कमज़ोर है। औरतें भी ट्रेक्टर, ट्रक, ट्रेन, हवाई जहाज़ चला सकती हैं। तुम्हारे स्कूल को भी पाँच महिला शिक्षिका ही चला रही हैं। सभी को, सब काम करने के मौक़े मिलने चाहिए।

यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते हमने एक बार फिर *लालाजी* के पोस्टर को देखा। ऐसा लग रहा था लालाजी अभी हाथ बढ़ाकर हम तीनों मैडमों को लड्डू दे देंगे।

लालाजी के पोस्टर के मार्फ़त आज हम रोज़गार के क्षेत्र में महिलाओं की भागादारी के मुद्दे को छू पाए थे। बच्चों के दिमाग़ में बने स्टीरियोटाइप को भी समझ पाए। बच्चे किसी दुकान में दुकानदार के रूप में पुरुषों को देखने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि कक्षा-कक्ष में दस मिनट के लिए किसी दुकान पर महिला दुकानदार के बैठाने की कल्पना मात्र से असहज हो उठते हैं। पिताजी क्या करेंगे जैसे ख़्याल दिमाग़ में चलने लगते हैं।

अभी भी इस पोस्टर में चर्चा की और सम्भावना है। लालाजी की दुकान में काम करने वाले कारीगर, वेटर, उनका काम, उनका वेतन, लालाजी का कर्मचारियों से व्यवहार आदि। यह

सब ऐसे क्षेत्र हैं जिनके माध्यम से, मूँछों की तारीफ़ सुनकर लड्डू देने वाले लालाजी से लेकर बच्चों से श्रम करवाते लालाजी तक के अनुभव कक्षा में आ सकते हैं। इसलिए कविता-पोस्टर सिर्फ़ भाषा-शिक्षण तक सीमित न रहकर सामाजिक ताने-बाने को परखने का मौक़ा भी देते हैं।

(शासकीय प्राथमिक शाला, खेड़ला, होशंगाबाद में पदस्थ शिक्षिका सुश्री प्रज्ञा शर्मा व सुश्री कला मीणा ने बच्चों से बातचीत में जो मदद की इसके लिए विशेष आभार।)

नन्दा शर्मा एकलव्य के जश्न-ए-तालीम कार्यक्रम में बतौर ब्लॉक समन्यवक काम कर रही हैं। वे होशंगाबाद में रहती हैं। उनसे nanda.nanda.sharma@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।